लिखिए 'संदर्भ' में

वो स्कूल - वे शिक्षक

वो स्कूल जाने का हमारा अपना ज़माना, और अब तक संजोई हुई बचपन की यादें – कुछ खट्ठी-मीठी; कुछ पढ़ने-पढ़ाने की। आखिर क्या था ऐसा उनमें, कभी तो इसे खोजने की कोशिश की होगी आपने। अगर आप शिक्षक हैं तो खुद पढ़ाने के अनुभव के बाद उस ज़माने के आपके अपने शिक्षकों के तरीकों के बारे में शायद सोचा होगा आपने, या फिर ऐसा ही कुछ और।

स्कूल या आपकी कक्षा से जुड़ी कोई ऐसी घटना जो भुलाए न भूले। लेकिन ये सब एक समीक्षात्मक नज़र से, जहां भी संभव हो थोड़ा-बहुत विश्लेषण करते हुए।

तो देखिए न – लिखने के लिए विषय की कमी तो बिल्कुल भी नहीं है। बस कलम उठाइए और लिखने बैठ जाइए। बस कोशिश कीजिएगा कि ऐसी घटनाओं को आप बिना बढ़ाई किए, बिना किसी गैरज़रूरी विशेषण में बांधे प्रस्तुत कर पाएं। बिल्कुल साधारण किस्सागोई के अंदाज़ में। वैसे संदर्भ में छपी ऐसी अन्य रचनाओं को पढ़कर भी आप ऐसे विषयों पर लिखने के बारे में बखूबी अंदाज़ा लगा सकते हैं।

लिफाफे पर यह पता लिखें:

वो स्कूल, वे शिक्षक,
द्वारा संदर्भ,
एकलव्य, कोठी बाज़ार,
होशंगाबाद 461 001

भूल सुधार: 16वें अंक में पिछले आवरण पर भूल से कोलेरेडो नदी की घाटी का चित्र चला गया था जबकि कैप्शन पृथ्वी के ध्रुवों के उलटने-पलटने को लेकर था। *इस विषय में जानकारी इस बार पृष्ठ 73 पर।*

आपने लिखा

मार्च-अप्रैल, 97 का अंक एक परिचित के घर पर देखा और पढ़ने के लिये ले लिया कि ये पत्रिका आखिर है क्या? उल्टा-पलटा और 'तुमने यह क्या बनाया' वाला लेख पढ़ने बैठ गई। सचमुच ही इसमें सही बात कही गई है। क्योंकि जब कभी भी बच्चे कुछ बनाने की कोशिश करते हैं हम उसमें अपने सुझाव देना शुरू कर देते हैं कि यहां से टांग लगाओ, यहां पर ऐसा नहीं ऐसा बनाओ, इस चित्र में ये रंग भरो। यह सब कुछ करके हम सोचते हैं हम बच्चों का हित कर रहे हैं। जबकि हम उनका अहित कर रहे होते हैं क्योंकि बच्चा जो कुछ भी बना रहा होता है उसके साथ में उसकी अपनी एक कल्पना होती है, एक सुझाव होता है जो हमें बच्चे से पूछना चाहिए कि वह चित्र में ये सब क्या बनाने की कोशिश कर रहा है और क्यों। सचमुच इतने अच्छे लेख के लिये संदर्भ धन्यवाद की पात्र है। आशा है आगे पढ़ूंगी तो और लिखूंगी।

नीता मिश्रा,
इंदिरा नगर रतलाम

मैं शैक्षिक संदर्भ का नियमित पाठक हूं। एक अध्यापक होने के नाते मुझे इसमें ऐसे अनेक विषय मिलते हैं जिनकी सहायता से पढ़ाने में सहायता मिलती है। विशेषकर विज्ञान व बच्चों के व्यवहार के बारे में।

एक शिकायत है, वह यह कि पत्रिका का विलंब से पहुंचना। पत्रिका कभी दो-दो महीने देर से आती है तो कभी-कभी तीन महीने के इंतज़ार के बाद।

रवीन्द्र कुमार
लांधी, कुरुक्षेत्र

संदर्भ के सोलहवें अंक में श्वसन के बारे में रोचक, विस्तृत जानकारी मिली। आज तक ऐसी जानकारी पढ़ने को नहीं मिली थी। श्वसन से संबंधित एक पाठ कक्षा पांचवीं के विज्ञान में है जिसमें कुछ भ्रम जैसी स्थिति पैदा हो जाती है। पाठ है – 'सजीवों में श्वसन और प्रजनन'। इस पाठ के अंत में दिए अभ्यास में यह प्रश्न भी किया गया है कि – 'पौधे ऑक्सीजन युक्त वायु कैसे लेते हैं?' परन्तु हम जानते हैं कि पौधे कार्बनडाईआक्साईड ग्रहण करते हैं। तो फिर ऑक्सीजन युक्त वायु लेने की क्या आवश्यकता? कुछ सह शिक्षकों से भी जिज्ञासा शांत करने की कोशिश की, परन्तु उनको भी कुछ समझ नहीं आया। शायद संदर्भ कुछ बता सके।

राजेश्वर पोरवाल,
धानमडी, रामपुरा, मंदसौर

पेड़-पौधों के श्वसन तंत्र पर जानकारी के लिए देखिए पृष्ठ नंबर 51.

सं.

मैंने संदर्भ की वार्षिक सदस्यता चौदहवें अंक से ली थी। उस अंक के बाद

अंक 15 आज तक नहीं आया। दो दिन पहले आपका सोलहवां अंक मिला। असल में यह पत्रिका इतनी ज्ञानवर्धक है कि एक अंक न मिलने पर कुछ अधूरा-सा लगा। सभी शैक्षिक विषयों को एक ही पत्रिका में पढ़ने से बहुत-सी जानकारी मिल जाती है। मैं चित्रकला की शिक्षिका होने के बावजूद कक्षा छठवीं, सातवीं में विज्ञान विषय पढ़ाती हूं। संदर्भ पढ़कर (साथ ही चकमक) मेरा काफी ज्ञानवर्धन होता है। नए अंक में 'तुमने यह क्या बनाया' पढ़कर लगा कि वाकई हम बच्चों की रचनाओं एवं स्वाभाविक सोच को दबा रहे हैं। इसका मुख्य कारण इस विषय को विद्यालय मे गौण बना देना ही है।

आशा करती हूं कि आगे भी सभी अंक क्रमवार आते रहेंगे।

तिलोत्तमा वाघ
नई दिल्ली

सोलहवां अंक सोलह कलाओं से युक्त प्रतीत हुआ। अर्थात इस अंक के सभी लेख रोचक एवं नवीन जानकारी से युक्त लगे। इसका रंगीन आवरण सचमुच इसमें और अधिक आकर्षण पैदा कर रहा था।

सबसे अधिक आकर्षक था कागज़ के टुकड़े को 96 गुना बड़ा करके दिखाया गया चित्र। यह मेरे लिए बिलकुल नया अनुभव था। इसे सभी शिक्षक साथियों स्कूल के बच्चों तथा पड़ोसियों को भी दिखाया। यह सभी को बहुत अच्छा लगा। जे. बी. एस. हाल्डेन के लेख 'प्रजनन शिक्षा के मायने' में शीर्षक तथा लेख मे कुछ तारतम्यता बैठती नज़र नहीं आई; क्योंकि लेख में यौन शिक्षा कैसे दें तथा किस प्रकार दी जानी चाहिए, इस बात पर ज़ोर दिया गया था किन्तु शीर्षक पढ़कर तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि प्रजनन शब्द को समझाया जा रहा है। अगर 'हाथी केंचुआ होता' तथा 'सांस लेने के तरीके' दोनों लेख हाईस्कूल के विद्यार्थी के लिए बहुत अच्छे हैं एवं सरल तरीके से समझाये गए थे। मुझे ऐसा लगा कि पौधों में श्वसन क्रिया किस प्रकार होती है इसे भी पूरेजी के लेख में शामिल किया जाना था। वैसे अगले अंकों में इस प्रकार की जानकारी दी जानी चाहिए। 'धरती के चुम्बक का असर' लेख अच्छा लगा किन्तु पढ़ने के बाद अनेक प्रश्न दिमाग में उठे जैसे कि पृथ्वी के चुम्बक में उदासीन बिन्दु है या नहीं? यदि उदासीन बिन्दु है तो रक्षा कवच के अभाव मे जीवधारियों पर क्या प्रभाव देखे जाते हैं? चुम्बकीय क्षेत्र में बदलाव को कैसे जांचा जाता है? सुरक्षा कवच के न रहने पर गुण सूत्रों की व्यवस्था में गड़बड़ी से जीवों में क्या बदलाव आता होगा? आदि आदि।

इसी लेख की प्रवासी पक्षी एवं कबूतर द्वारा अपने ठौर को ढूंढ लेने वाली जानकारी पसन्द आई। 'तुमने यह क्या बनाया' – इसमें कमलेश जी ने वास्तव

में बालकों के मनोविज्ञान तथा बाल क्रियाओं का काफी बारीकी से अनुभव किया है, बाल अवस्था में यदि बालकों को कलात्मकता की ओर मोड़ दिया जाए तो वे आगे जाकर अच्छे कलाकार सिद्ध होंगे किन्तु अभिभावक चित्रकला को समय की बर्बादी समझकर बालकों के विकास के मार्ग में बाधा बन जाते हैं।

'छतन और मास्टर साहब' प्रसंग सचमुच यथार्थता के धरातल पर सौ प्रतिशत खरा है। मेरे जीवन में ऐसे कई अनुभव आए हैं जहां शिक्षक ने विद्यार्थी को अध्ययन की ओर प्रेरित तो नहीं किया बल्कि इतना प्रताड़ित किया कि उन्होंने स्कूल आना छोड़ दिया। वे बालक गैरिज में कालिख पोतते या अपना बचपन कप-बसी के साथ धोते दिखाई देते हैं। उस समय उन्हें देखकर मन में हलचल होती है।

'कौन ऐसी महिला है' में जैन धर्म के इतिहास की एक अच्छी एवं नवीन जानकारी थी। किन्तु लेख इतना विस्तार से दिया गया था कि अन्त तक आते-आते उसने रोचकता लगभग समाप्त ही कर दी थी। 'ललचाती गंध और केकड़ा मकड़ी' एक रोचक जानकारी थी किन्तु इसमें यह और बता दिया जाता कि केकड़ा मकड़ी पर पाचक रस का प्रभाव क्यों नहीं पड़ता तो केकड़ा मकड़ी की जानकारी पूर्ण हो जाती।

मीरा शर्मा
शिक्षक, हरदा

यह मैग्ज़ीन शैक्षिक जगत के लिए सराहनीय कार्य कर रही है। इसमें प्रकाशित लेख शिक्षकों के साथ-साथ छात्रों व अन्य वर्ग के लिए ज्ञानवर्धक व उपयोगी हैं।

आपकी पत्रिका द्वैमासिक है लेकिन इसका प्रकाशन देरी से होता है या देरी से पोस्ट की जाती है? क्योंकि हमारे विद्यालय में मार्च-अप्रैल अंक 15 जुलाई को प्राप्त हुआ है। यही मेरी आपसे शिकायत है क्योंकि यदि हम अंक की समीक्षा, प्रश्नों के उत्तर आदि के सम्बन्ध में आपको पत्र लिखें तब तक शायद आपका दूसरा अंक प्रकाशित हो चुका होगा। आपकी पत्रिका संदर्भ के लिये हमारे विद्यालय परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएं।

ममता बड़ेरा
वरिष्ठ शिक्षक, गणित
रामगढ़ शेखावाटी, राजस्थान

बहुत दिनों के बाद नया अंक मिला। डॉ. पूरे के श्वसन संबंधी लेख ने जीवशास्त्र को समझने की प्रेरणा दी।

'कौन ऐसी महिला है' लेख बहुत बढ़िया बन पड़ा। श्री सुब्रह्मण्यम जिस तरह छोटे वाक्यों में बड़ी बात कहते हैं उससे इतिहास का अध्ययन प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है।

कुछ अध्यापक पाषाण हृदय होते हैं जैसे छतन के मास्टर साहब। यही लोग शालाओं को डरावना और अप्रिय स्थान बनाते हैं।

'आवर्त्त सारणी का इस्तेमाल' का कुछ हिस्सा सरल भाषा में होना चाहिए था।

नरोत्तम शर्मा, वरिष्ठ व्याख्याता
डाइट, बालाघाट, म प्र.

भाषा और बोली जैसे विषय पर जितना कहा जाए कम है। इसके विस्तार में जाना सूर्य को दीपक दिखाना है। फिर भी बारहवें अंक में साधनाजी का लेख ज्ञानवर्द्धक लगा। भाषा और बोली का इतिहास काफी प्राचीन है। दोनों ही अपनी बात कहने का एक माध्यम हैं। कोई भी भाषा इतनी सरल नहीं होती जितनी हम समझते हैं। क्योंकि किसी भी भाषा की सामान्य विविधता को पहचान लेना अलग बात है परन्तु उसकी तकनीकी को जानना कठिन होता है।

मान लो 'क' भाषा बोलने वाले अपनी मूल भाषा के बाद 'ख' भाषा बोलने लगे तो अलग ही फर्क दिखाई देता है। हर भाषा की अपनी शैली अपना प्रवाह होता है। सभी भाषाओं की विविधता को जानकर प्रख्यात साहित्यकार हजारी प्रसाद द्विवेदीजी ने लिखा था कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसकी मातृ भाषा 'मां' के समान होती है। 'मां' के समान सभी भाषाओं को आदर देना चाहिए। साधना जी ने शीर्षक विवाद और विज्ञान पर पुनः अपनी मंशा दोहराई है। यह सच है कि 'गुम होती बोलियां' शीर्षक से लिखे गए लेख का शीर्षक 'भाषाई विविधता की समझ' होना चाहिए था। डॉ. सबरवाल तथा दिलीप झा की टिप्पणी पर उन्हें निश्चित रूप से अटपटा लगा होगा। मुझे लगता है इस टिप्पणी से लेख की मूल भावना ही परिवर्तित हो गई।

जब भाषा और बोलियों पर विवाद करने बैठे हैं तब शीर्षक और विषय वस्तु पर विवाद क्यों छिड़ गया है। यद्यपि यह प्रश्न इसलिए उठा कि लेख पढ़कर मस्तिष्क के पटल पर गुम होती बोलियों के आंकड़े काफी प्रभाव छोड़ते है। अतः वही शीर्षक उभरता है। अतः अपेक्षित शीर्षक न होने से विषय वस्तु की मूल भावना नहीं बदल जाती। जैसे की एक वाक्य जब कई कानों से गुज़रता है तो उस वाक्य का अर्थ ही बदल जाता है। इसी प्रकार हर पाठक अपने अपने अलग सोच से जब लेख पढ़ता है तब भी उसका मूल रूप परिवर्तित हो जाता है। यह फर्क शैली के कारण भी हो सकता है।

रमाकान्त अग्निहोत्री के लेख ने तो अपने लेख 'कौन भाषा कौन बोली' से भाषा के इतिहास को बदलने का प्रयास किया है। सामान्य व्यक्ति अपनी भाषा को खूब अच्छी तरह बोलता, समझता और जानता है। यह बात गले नहीं उतरती। यदि ऐसा होता तो कोई विद्यार्थी भाषा की परीक्षा में अनुत्तीर्ण नहीं होता। क्योंकि बोलना और भाषा को जानना यह दोनों काफी फर्क बातें हैं। जहां तक समझ का प्रश्न है वह समझ लेता है क्योंकि बोलने के साथ भावों की अभिव्यक्ति होती है। बोलने की क्रिया

वर्तनी पर निर्भर करती है। वर्तनी से उच्चारण होता है। किसी भी भाषा या बोली की निपुणता, बोलने के प्रवाह तथा उच्चारण पर काफी निर्भर करती है। यह कुशलता कम लोगों में पाई जाती है। सभी भाषाओं ने अपनी शुद्धता के लिए एक पैमाना निश्चित किया है। यही पैमाना शायद व्याकरण के आस-पास रहता है। यदि भाषाओं और बोलियों की अपनी कोई सीमा (व्याकरण की) नहीं होगी तो एक भाषा बिगड़कर कोई और भाषा या बोली बन जाएगी और इस प्रकार भाषा और बोलियां हमेशा परिवर्तित होती रहेंगी। इस वजह से भाषा की शुद्धता या उसको मानकीकृत करना कठिन हो जाएगा। इसी कारण भाषा को व्याकरण की आवश्यकता है।

भाषा और बोली के अन्तर को जानने के लिए और अधिक विश्लेषण की आवश्यकता है। भाषा एक विज्ञान है, यदि हम यह तथ्य मानते हैं तो कुछ आधारभूत नियमों में इन्हें बांधना होगा। किसी देश में भाषा या बोलियों की संख्या के आधार पर प्रगति को नहीं आंका जा सकता। अग्निहोत्री जी के लेख ने एक नया सोच दिया है कि भाषा और बोली पर एक बार पुनः विचार किया जाए, एक सर्वश्रेष्ठ परिभाषा तय की जाए।

राजेश कुमार साहू, शिक्षक,
पिपरिया, होशंगाबाद

आवर्त सारिणी : झण्डों की दिशा गलत

पिछले अंक में प्रकाशित डॉ. सुशील जोशी के आवर्त सारिणी वाले लेख में पृष्ठ 53 पर तत्वों के गुणों में क्रमिक परिवर्तन को आवर्त सारिणी के ऊपर, नीचे और आजू बाजू में झण्डे की आकृति द्वारा दर्शाया गया है। यानी झण्डे का संकरा भाग उस दिशा में विशिष्ट गुणों में कमी को दर्शाता है। यदि यह सही है तो तत्वों की इलेक्ट्रॉन ऋणात्मकता दर्शाने वाले दोनों झण्डों की दिशा गलत है। समूह एक से सात की ओर परमाणु त्रिज्या घटती है और इसी के साथ इलेक्ट्रॉन ऋणात्मकता में वृद्धि होती है। अतः झण्डे की दिशा निम्नानुसार होनी चाहिए।

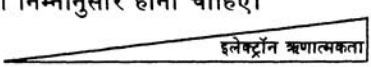

इसी प्रकार किसी समूह में ऊपर से नीचे की ओर परमाणु त्रिज्या बढ़ती है – इसी के साथ इलेक्ट्रॉन ऋणात्मकता में कमी आती जाती है अतः झण्डे की दिशा ऐसी होनी चाहिए॥

सुधा हार्डीकर, शासकीय महाविद्यालय, मुलताई, ज़िला बैतूल

इस भूल के लिए हमें खेद है.
सं.